शिक्षा की दृष्टि में यम-नियम की अवधारणा

सोनिया रानी

सहायक प्रोफेसर, व्यवहारिक योग एवं स्वास्थ्य विभाग, डी.ए. वी. कॉलेज फॉर गर्ल्स यमुनानगर।

सार

शिक्षा किसी भी देश की सभ्यता और संस्कृति का अनिवार्य अंग है शिक्षा के द्वारा न केवल व्यक्ति का मानसिक विकास होता है बल्कि सामाजिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक सरंक्षण भी होता है शिक्षा मानव जीवन के विकास की प्रणाली है, शिक्षा का संबंध जितना व्यक्ति से है उससे अधिक समाज से है। मानव जीवन में जो कुछ भी अर्जित करता है वह शिक्षा का ही परिणाम है। शिक्षा ही मानवीय व्यवहार को संतुलित एवं सर्वोत्तम बनाती हैं। शिक्षा मार्गदर्शक है।

विषय सूचक शब्द –संस्कृति, अहिंसा, आध्यात्मिकता, सन्तोष, स्वाध्याय।

भूमिका

प्राचीन भारत का शिक्षा दर्शन आदर्शवादी शिक्षा दर्शन माना जाता है भारतीय शिक्षा का आदर्शवाद छात्र को केवल किसी विशेष सिद्धांत के अनुसार शिक्षा देना मात्र नहीं समझा जाता था अपितु यह संस्कारों के माध्यम से आदर्शों के अनुरूप जीवन गठन की व्यवस्था थी, भारतीय जीवन का सनातन आदर्श आध्यात्मिकता है। भारतीय वैदिक परंपरा में आश्रम व्यवस्था प्रचलित थी, सम्पूर्ण समाज में मानवजाति चार आश्रमों में बटी हुई थी-(1) ब्रह्मचर्यआश्रम (2) गृहस्थआश्रम (3) वानप्रस्थआश्रम (4) संन्यासआश्रम।

ब्रह्मचर्य आश्रम में विद्यार्थी गुरुकुल में रहकर विद्या ग्रहण करते थे ब्रह्मचर्य आश्रम तपस्या पूर्ण जीवन होता था उन्हें प्रारंभ से ही उचित आचार- व्यवहार सिखाया जाता था। सभी महर्षि पतंजलि द्वारा बतायें यम- नियम का पालन करते थे जिससे उनका सामाजिक, नैतिक एवं मानसिक विकास होता है।

शिक्षा का अर्थ है-बालकों का मार्ग प्रशस्त करना।

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बच्चों की अविकसित योग्यताओं, क्षमताओं, शक्तियों और रूचियों को इस प्रकार निर्देशित करना है कि वे अधिक से अधिक लाभ सकें, ऐसी दशा में ही बच्चे दूसरों को ठेस पहुँचाये बिना और स्वयं अपमानित हुए बिना अपनी इच्छाओं को पूर्ण कर सकते है।

शिक्षा मनुष्य की मूल की प्रवृत्तिया व्यवहार को मानवीय व्यवहार में रूपांतरित करती हैं, मानव आवेगात्मक व दुर्व्यवहार न करके विवेकयुक्त व्यवहार करता है। शिक्षा मानव जीवन का आधार है।

यम की अवधारणा

यम शब्द 'यमु' बन्धने धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगाने पर निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है बाँधने वाला या नियंत्रित करने वाला। चूँकि अहिंसादि यम मनुष्यों को नियंत्रित करते हैं, उसके अशुभ व्यवहारों पर रोक लगाते हैं इसलिए इन्हें यम कहा जाता है

महर्षि ने यमों की संख्या पाँच बतायी है-

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहायमाः

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये यम है। हिंसा, मिथ्या भाषण, चोरी, वीर्य ना शत था अनुचित वित्तसंग्रह पर ये अंकुश लगाते हैं इसलिए इन्हें यम कहना सार्थक है।

1 -अहिंसा का स्वरूप

मन से किसी का अनिष्ट चिंतन, वाणी से कठोर बोलना तथा शरीर से किसी को पीड़ा पहुँचाना हिंसा कहा जाता है। इसके विपरीत मन,वचन और कर्म से किसी भी प्राणी को पीड़ा न पहुँचाना अहिंसा है। समस्त योगांगों में अहिंसा ही प्रधान है। अहिंसा के आगे जितने भी यम और नियम है वे सभी अहिंसा मूल कही हैं अर्थात वे सब अहिंसा के भाव को पुष्ट करने के लिए ही हैं। जैसे-जैसे सत्यादी यमों का तथा शौच आदि नियमों का अनुष्ठान किया जाता है वैसे-वैसे अहिंसा निर्मल और पुष्ट होती जाती हैं अतः अहिंसा का ज्ञान सर्वप्रथम आवश्यक है। यदि अहिंसा का ज्ञान नहीं होगा तो यम नियमादि का ज्ञान भी निष्फल है।

अहिंसा का फल

अहिंसाप्रतिष्ठायांतत्सन्निधौवैरत्यागः।

मनुष्य के चित्त में जब अहिंसा का भाव प्रतिष्ठित हो जाता है तो उसके सानिध्य में आये हुए स्वाभाविक विरोधी प्राणियों का भी वैर भाव शान्त हो जाता है। अहिंसा की प्रतिष्ठा का अर्थ है कि किसी भी विपरीत स्थिति में भी मन में हिंसा भावना उत्पन्न न हो। अहिंसा की भावना से मनुष्यों ही नहीं अपितु पशु पक्षी का चित्त भी शान्त और पवित्र हो जाता है। यह एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। मनुष्य के चित्त से उठने वाली सत्व की तरंगें वातावरण में मिलकर वातावरण को

पवित्र और शांत कर देती हैं जिससे मनुष्य का ही नहीं अपितु पशु का भी चित्त शांत और पवित्र हो जाता है।

2 - सत्य का स्वरूप

वाणी और मन की यथार्थता को सत्य कहते हैं अर्थात प्रत्यक्ष प्रमाण इन्द्रियों से देखा गया,तर्क से अनुमान किया हुआ और शास्त्रों से सुना हुआ, वैसा ही दूसरों के सामने बोली गई वाणी सत्य कही जाती है। यही मन और वाणी की एकरूपता है। जैसा मन में समझता हो यदि वैसी ही वाणी अन्य के प्रति बोली गयी हो तो यह वाणी सत्य कही जाती है। समस्त प्राणियों के उपकार के लिए वाणी का प्रयोग होना चाहिए प्राणियों की हिंसा या हानि के लिए नहीं। अतः सत्य वह वाणी है जो वंचना तथा भ्रांति को उत्पन्न न करें।

सत्य का फल

सत्यप्रतिष्ठायांक्रियाफलाश्रयतावम्।

वाणी में सत्य की प्रतिष्ठा होने पर मनुष्य को शुभा शुभ क्रियाओं का फल वाणी से उच्चारण करते ही प्राप्त हो जाता है। यदि वह किसी को वाणी से यह कह दे कि तू धार्मिक हो जातो वह धार्मिक हो जाता है, कहने का तात्पर्य यह है कि वाणी अमोघ होती हैं। सत्यनिष्ठ मनुष्य का जैसे आशीर्वाद सफल होता है वैसे ही उसका श्राप भी सफल होता है।

3- अस्तेय का स्वरूप

स्तेय का अर्थ चोरी है। स्तेय के अभाव को अस्तेय कहते है अर्थात किसी दूसरे के धन व अन्य सामान को मन, वचन व कर्म से ग्रहण न करना ही अस्तेय है। शास्त्रों के अनुसार किसी अन्य के धन आदि को हाथ से ग्रहण करना तो दूर मन से भी ग्रहण करने की इच्छा के अभाव को अस्तेय कहते हैं।

अस्तेय का फल

अस्तेयप्रतिष्ठायांसर्वरत्नोपस्थानम्

अस्तेय की प्रतिष्ठा होने पर मनुष्य के पास सब देश-देशांतर से हीरा मोती आदि अमूल्यरत्न उपस्थित हो जाते हैं। यद्यपि योगी उन रत्नों की इच्छा नहीं करता, रत्न स्वंय ही उपस्थित होते हैं।

4 - ब्रह्मचर्य का स्वरूप

ब्रह्मचर्य का अर्थ है- ब्रह्म में आचरण करना तथा अपनी इन्द्रियों को वश में करना।

ब्रह्मचर्य का फल

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायांवीर्यलाभः

ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा होने पर मनुष्य को सब प्रकार की शक्तियो का लाभ होता है।

5- अपरिग्रह का स्वरूप

आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रहन करना। यह पाँचवा यम है विषयों का अस्वीकार मनुष्य के लिए परमआवश्यक है। क्योंकि विषयों के संग्रह में पाँच दोष है- अर्जन, रक्षण, क्षय, संग और हिंसा। विषयों के संग्रह से कष्ट होता है फिर उनकी रक्षा करने में परिश्रम करना पड़ता है और किसी प्राणी को पीड़ा पहुँचाये बिना विषय भोग संभव नहीं। अतः इन सभी दोषों के कारण विषयों का अस्वीकार रूप अपरिग्रह मनुष्य के लिए आवश्यक बताया गया है।

अपरिग्रह का फल

अपरिग्रहस्थैर्यजन्मकथान्तसम्बोधः।

अपरिग्रह की स्थिरता होने पर मनुष्य को भूत, वर्तमान तथा भविष्यत्काल के जन्मों का ज्ञान हो जाता है।

नियम की अवधारणा

यम और नियम में केवल 'नि' उपसर्ग निःशेष का वाचक है। नियम मनुष्य को सम्पूर्ण रूप से चित्त को बाँधते है तथा चित्त में अन्दर तक प्रविष्ट होकर मलों को साफ करते हैं। इसलिए इन्हें नियम कहा जाता है। नियमों को यमों की पूर्वभूमि का कहा जा सकता है, क्योंकि जब शरीर और चित्त स्वच्छ नहीं होंगे अथवा चित्त असंतुष्ट होगा, शरीर में द्वन्द्व सहने की शक्ति न हीं होगी तथा ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त नहीं होगा इसलिए मनुष्य को नियमों का पालन करना चाहिए। नियम भी पाँच है-

शौचसंतोषतपस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानियमः।

शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान इन पाँच व्यक्तिगत शुभ आचरणों को नियम कहा जाता है।

1 - शौच

शौक का अर्थ है शुद्धि अथवा स्वच्छता। यह दो प्रकार का है-बाह्य शौक तथा आभ्यांतर शौच।

जल व मिट्टी से शरीर को स्वस्थ रखना व पवित्र भोजन तथा हित-मित से उदर की शुद्धि करना बाह्य शौच है।

मैत्री करूणा आदि भावनाओं से चित्त के राग -द्वेष, ईर्ष्या आदि मलों को साफ करना आभ्यांतर शौच है।

शौच का फल

शौच दो प्रकार की होती है - बाह्यशौच, आन्तरिक शौच। बाह्य शौच से शरीर के दोष शुद्ध होते है और आन्तरिक शौच से अन्तःकरण की शुद्धि होती हैं जिससे सत्त्व शुद्धि, सौमनस्य, अर्थात शुद्ध भावना का जन्म होता है। भावना शुद्धि के पश्चात् इन्द्रियां वश में होती है।

2 - सन्तोष

पर्याप्त सामग्री से अधिक व अनुपयोगी अन्य पदार्थों के ग्रहण करने की इच्छा का न होना सन्तोष कहलाता हैं संतुष्ट व्यक्ति सबसे समृद्ध और सुखी होता है। असंतुष्ट व्यक्ति से बड़ा कोई दरिद्र नहीं होता। संतोष ही मनुष्य का सबसे बड़ा धन हैं।

सन्तोष का फल

सन्तोष की भावना चित्त में प्रतिष्ठित होने पर मनुष्य को उत्तम सुख की प्राप्ति होती हैजो तृष्णा को छोड़ देता है वही सच्चा सुख प्राप्त करता है। क्योंकि दुखों का मुख्य कारण तृष्णा है, जो इस तृष्णा को छोड़ देता है वही सच्च सुख प्राप्त करता हैं।

3 - तप

भूख-प्यास, शीत -उष्ण, खड़ा होना और बैठना आदि द्वन्द्वों को सहना तप कहलाता है।मौन धारण करना भी तप हैं।

तप का फल

तप की प्रतिष्ठा होने पर मनुष्य को तमो गुण से प्राप्त अशुद्धि का क्षय होता है तथा शरीर और इन्द्रियों की सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

4 - स्वाध्याय

स्वयं का अध्ययन करना तथा आर्ष ग्रंथों का अध्ययन करना स्वाध्याय कहलाता है। वस्तुतः स्वशब्द आत्मा का वाचक है और वेद, उपनिषद, गीता आदि शास्त्रों का अध्ययन तथा ओंकार का जप स्वाध्याय कहलाता हैं।

स्वाध्याय का फल

वेदादि शास्त्रों के अध्ययन व परमात्मा के ओंकार आदि नामों के जपरूप स्वाध्याय में प्रतिष्ठा प्राप्त होने पर मनुष्य को अपने अभीष्ट देवता का दर्शन होता है।

5 - ईश्वरप्रणिधान

अपनी सभी क्रियाएं ईश्वर को समर्पित कर देना ही ईश्वरप्रणिधान है। यही बात श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन ! तू जो भी होम करता है, जो खाता है, जो करता है, जो दान करता है तथा जो भी तप करता है वह सब तू मुझे अर्पित कर दे।

ईश्वरप्रणिधान का फल

समस्त कर्मों को ईश्वर के लिए अर्पित करने से मनुष्य को समाधि का लाभ शीघ्र होता है।

यम और नियम द्वारा मनुष्य के मन की बुराईयां जैसे-राग, द्वेष, हर्ष -शोक, काम - क्रोध आदि दूर की जाती है, यम एक प्रकार से नियत कानून की तरह है और नियम उस कानून को लागू करने वाली प्रक्रिया। यम और नियम से हमारी ऊर्जा को व्यवस्थित करने में सहायता मिलती है जिससे हमारा बाहरी जीवन आन्तरिक विकास की और उन्मुख हो जाता है इनसे हमें स्वयं में करूणा और जागरूकता लाने में सहायता मिलती है जिससे जीवन के मूल्यों का सम आदरहोने लगता है। जिससे हम बाहरी नियंत्रण के साथ आन्तरिक संतुलन को कायम रखने में सक्षम होते हैं।

शिक्षा का महत्व

आज समाज में सर्वाधिक सामाजिक, सास्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों का पतन हुआ है।मानव के अंदर दया, परोपकार, भ्रातृत्व भावना, प्रेम एवं सहिष्णुता,सत्य, अहिंसा,संतोष, आदि नैतिक मूल्य नष्ट हो रहे हैं।शिक्षा मानव जीवन का अभिन्न अंग है, शिक्षा जीवन में आगे बढ़ने और विकास का एक अनिवार्य पहलू है इसके बिना किसी देश के विकास के लिए उत्कृष्टता की संभावना बहुत कम है।

शिक्षा चरित्र निर्माण के साथ -साथ लोगों के व्यक्तित्व को आकार देने में एक आवश्यक भूमिका निभाती है क्योंकि शिक्षित युवा ही देश व अपना भविष्य के विकास और प्रगति को सुनिश्चित कर सकता है। शिक्षा के बिना मनुष्य नींव के बिना एक इमारत की तरह है।शिक्षा मानव जीवन का अभिन्न अंग है। शिक्षा और ज्ञान न केवल व्यक्तिगत विकास के लिए आवश्यक है बल्कि यह अर्थव्यवस्था के लिए भी आवश्यक है, शिक्षा एक व्यक्ति की सोच का पोषण करती हैं और जीवन में सोचने, कार्य करने और आगे बढ़ने की क्षमता प्रदान करती है।

शिक्षा : मानव के विकास का प्रयास -शिक्षा भावी संतति के विकास लिए एक प्रयास है जो समाज के प्रौढ़ सदस्यों द्वारा किया जाता है, यह सभी व्यक्तियों के लिए वैयक्तिक पूर्णता हेतु सुविधा प्रदान करने का एक महत्वपूर्ण प्रयास है। जिस व्यक्ति में सोचने - समझने की शक्ति होती है उसी को विकसित कहा जा सकता है, जो व्यक्ति अपने चारों ओर होने वाली घटनाओं की आलोचना कर सकता है वही व्यक्ति समाज को कुछ योगदान दे सकता हैं। ऐसे व्यक्ति को सदैव बदलने वाले समाज से अपना सामंजस्य करने में कोई कठिनाई नहीं होती है उसे इस स्थिति में शिक्षा द्वारा ही पहुँचाया जाता है। दूसरेशब्दों में शिक्षा ही उस का विकास किया जाता है। संक्षेप हम कह सकते है कि शिक्षा व्यक्ति कि विकास करने में सहायता देती है यह उसकी जन्मजात शक्तियों का शैशव से प्रौढ़ता तक इस प्रकार विकास करती है कि वह अपने वातावरण से अपना सामंजस्य स्थापित कर सके और उस पर अधिकार प्राप्त करके उसे उत्तम भी बना सके।

शिक्षा: प्रशिक्षण कार्य है:- शिक्षा प्रशिक्षण कार्य है जिसके द्वारा व्यक्ति को सामाजिक जीवन में अपना उचित स्थान ग्रहण करने के योग्य बनाया जाता है। मनुष्य मूलतः पशु होता है अर्थात वह पशु प्रवृत्ति रखता है, उसे प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है जिससे कि वह अपनी भावनाओं, अभिलाषाओं और व्यवहारों पर अधिकार करना सीख जाये ऐसा प्रशिक्षण प्राप्त करके ही वह समाज का उत्तरदायी सदस्य बन सकता है, उसे यह प्रशिक्षण शिक्षा के द्वारा ही दिया जाता हैं।

शिक्षा:मार्ग प्रदर्शन है:- बालकों को शिक्षा देना अर्थात उनका मार्ग निर्देशन करना। बच्चों का कुशलता से मार्गप्रदर्शन किया जाए इसके लिए निम्न बातें आवश्यक है-

1- निर्देशन बालक के स्वभाव के विरुद्ध नहीं होना चाहिए।

2- बालक के ऊपर कोई अनावश्यक विचार नही लादा जाना चाहिए।

3- निर्देशन से पहले बालक की आवश्यकताओं, योग्यताओं, क्षमताओं और रूचियों का अध्ययन कर लेना चाहिए।

शिक्षा: समग्र अभिवृद्धि है :- अभिवृद्धि का अर्थ है शारीरिक अंगों और मानसिक शक्तियों का विस्तार। प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रशिक्षण और वातावरण के अनुसार क्रिया और प्रतिक्रिया करता है फलतः वह अपने प्रारंम्भिक रूप और स्वभाव से परिवर्तित हो कर एक नई सूरत में आ जाता है परिवर्तन की ये सब प्रकियाएँ, अभिवृद्धि की प्रक्रियाएँ है। अतः शारीरिक, मानसिक और संवेगात्मक ढ़ांचे की अभिवृद्धि शिक्षा है और शिक्षा प्राप्त करना अभिवृद्धि करना है।

शिक्षा: व्यवहार का रूपांतरण है:- शिक्षा मानव के मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार को मानवीय व्यवहार में रूपांतरित करती है। मानव आवेगात्मक व्यवहार न करके विवेकयुक्त व्यवहार करता है इस प्रकार शिक्षा मनुष्य को नवीन रूप प्रदान करती है। शिक्षा मनुष्य को नवीन आदतों एवं कौशलों को सिखाकर उसका रूपान्तरण करती है। यह वह साधन है जिसके द्वारा बालक अपने जातीय अनुभवों को प्राप्त करके अपने व्यवहार को परिवर्तित करता है। शिक्षा की विषय वस्तु प्रकृति तथा विधियां मनुष्य को अच्छा या बुरा मानती है।

शिक्षा मुक्ति है:- शिक्षा अज्ञानता से मुक्ति दिलाती है यह मनुष्य को स्वार्थ परता से छुटकारा दिलाती हैं और उसे परोपकारी तथा सामाजिक रूप से जागरूक बनाती हैं।

उपसंहार

शिक्षा हमारे जीवन में बहुत आवश्यक है क्योंकि यह हमारे लिए विकास का रास्ता खोलती है, शिक्षा चरित्र निर्माण के साथ-साथ लोगों के व्यक्तित्व को आकार देने में आवश्यक भूमिकानिभाती है। शिक्षा से ज्ञान मिलता है जो मनुष्य को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाता है। शिक्षा एक मात्र मूल्यवान संपत्ति है जिसे मनुष्य प्राप्त कर सकता है,आज समाज में बढ रहे अत्याचार, दुराचार और अपराध का मुख्य कारण कहीं न कहीं शिक्षा का अभाव है। यदि बच्चों को प्रारंभ से ही यम- नियम की शिक्षा दी जाएं तो उनका शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास तो होगा ही साथ- साथ उनके नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों में भी वृद्धि होगी। यम और नियम के सभी साधन व्यक्ति की नैतिकता और उसके विकास से तो जुड़े हुए हैं ही समाज के संदर्भ में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। यम और नियम का ज्ञान व्यक्ति को उस के परिवेश से परिचित करवाता है जिससे मनुष्य का आत्मिक विकास होसकें। ज्ञान का अर्जन के लिए शिक्षा एकमात्र आधार है जिस पर मानव जाति का भविष्य निर्भर करता है। शिक्षा के

माध्यम से यम और नियम का पालन करने का अर्थ मनुष्यत्व का सर्वसर्वतोन्मुखी विकास हैं अतः आत्मकल्याण के लिए यम- नियम का ज्ञान होना अनिवार्य हैं।

संदर्भग्रंथ सूची

1. महर्षि पतंजलि प्रणीत स्वामी रामदेव,योगदर्शन, कृपालु बाग आश्रम, कनखल हरिद्वार।
2. स्वामी सत्यानंद सरस्वती, मुक्ति के चार सोपान, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट मुंगेर बिहार।
3. आरोग्य सेवा प्रकाश, प्राकृतिक आयुर्विज्ञान, मोदी नगर, उत्तर प्रदेश।
4. डॉ अनुजा रावत,समग्र स्वास्थ्य एवं यौगिक विधियां, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली।
5. योगाचार्य डॉ सुरक्षित गोस्वामी, पातञ्जल योग एवं नाथ योग, सत्यम्पब्लिशिंग हाउस एन-3/25मोहन गार्डन नई दिल्ली।
6. अनुवादक पं राम कृष्ण शर्मा'राजर्षि',अष्टांङयोग रहस्य, घेरण्डसंहिता, रणधीर प्रकाश, रेलवे रोड़ हरिद्वार,तृतीय संस्करण 2005 ।
7. इ॰सी॰पी॰ सक्सेना,योग एवं अध्यात्मदर्शन, राधा पब्लिकेशन्स, 423/1 अंसारी रोड दरियागंज, नईदिल्ली।